अन्तःपरजीवी कैसे पहुँचते हैं गन्तव्य तक?

विपुल कीर्ति शर्मा

प्रायः कक्षा में विद्यार्थियों द्वारा पूछे गए प्रश्न प्राध्यापकों को अधिक पढ़ने और तथ्यों को खोजने के लिए मजबूर कर देते हैं। भाग्य से ऐसे उत्सुक विद्यार्थी मुझे कुछ ज़्यादा ही मिले हैं। एक दिन लीवरफ्लूक का जीवन-चक्र पढ़ाते हुए मुझ पर भी एक मासूम-सा प्रश्न दागा गया कि लीवरफ्लूक लीवर में कैसे पहुँच जाता है। इस आसान-से लगने वाले प्रश्न ने लगभग 100 वर्षों से अन्तःपरजीवी कृमि (endoparasitic worms) पर शोध करने वाले अनेक वैज्ञानिकों को चारों खाने चित किया है।

अन्तःपरजीवी अनुकूलन के कारण कृमि शरीर के अनेक अंग (जैसे आँख, प्रचलन के अंग और कुछ में आहार नाल एवं उत्सर्जी तंत्र) जैव-विकास के दौरान विलुप्त हुए हैं। ऐसे अन्तःपरजीवी कृमि जिनकी न तो आँखें हैं और न ही प्रचलन अंग, मेज़बान के शरीर में किसी निश्चित स्थान तक कैसे पहुँच जाते हैं? उदाहरण के लिए, लीवरफ्लूक भेड़ के लीवर में पहुँच जाता है। *डिप्लोस्टोमम फ्लैक्सिकॉडेटम* मछली की आँखों के लेन्स में, *हेलिग्मोसोमाइड्स पॉलिगायरस* चूहों की आँतों के अग्र भाग (ग्रहणी/duodenum) में, *वुकरेरिया बैनक्रॉफ्टाइ* मनुष्यों की लसीका वाहिनी में और *पैरलाफॉस्ट्रोगायलस टीनियस* अमेरिका की एक हिरण प्रजाति के मस्तिष्क एवं मेरूरज्जु को घेरने वाली झिल्लियों जैसे नियत स्थान पर ही कैसे पहुँचते हैं? अध्ययन के लिए उपरोक्त सभी प्रकार के कृमियों को ढूँढ़ने के लिए मेज़बान के पूरे शरीर में खोजने की आवश्यकता नहीं है। उन्हें सदैव नियत स्थान पर देखा जा सकता है। मैंने अपना शोध चूहों में पाए जाने वाले *एच. पॉलिगायरस* नामक अन्तःपरजीवी निमेटोड कृमि पर किया है। वयस्क नर एवं मादा कृमि को बाहर निकालने के लिए मुझे अक्सर चूहे की आहार नाल का डिसेक्शन करना पड़ता था। मुझे कभी भी चूहे की पूरी और लम्बी आहार नाल को खोलने की ज़रूरत नहीं पड़ी। अगर चूहे *एच. पॉलीगायरस* से संक्रमित हैं तो वे आँतों के प्रारम्भिक 2 से.मी. में ही मिलेंगे, और कहीं नहीं।

मेज़बान में हेलमिन्थ कृमि के पाए जाने वाले स्थान इतने सुनिश्चित होते हैं कि यह अक्सर वर्गीकरण का आधार होता है। प्रायः कुछ अन्तःपरजीवी कृमि का सामान्य नाम भी मेज़बान के नियत स्थान के आधार पर रखा जाता है, जैसे - लीवरफ्लूक, हार्टवर्म, लंगवर्म आदि। अब मज़ेदार प्रश्न यह है कि कौन इन्हें निश्चित स्थान तक पहुँचने के लिए दिशा या रास्ता दिखाता है? ये अपने गन्तव्य तक कैसे पहुँच जाते हैं?

सबसे आसान रास्ता क्यों नहीं?

अनेक अन्तःपरजीवी कृमि मेज़बान में गन्तव्य तक पहुँचने के लिए घुमावदार, अबूझ और बेकार लगने वाले रास्तों को चुनते हैं। कुत्तों की छोटी आँत (ग्रहणी) में पाया जाने वाला ट्रिमेटोड *एलेरिया केनिस* भोजन के साथ, अमाशय से सीधे छोटी आँत में पहुँच सकता है। किन्तु यह अमाशय की दीवारों को भेदते हुए, आंत्रयोजनी मध्यपट, फेफड़े, श्वासनली, ग्रासनली होते हुए फिर से अमाशय में आकर, लम्बा रास्ता पार करके ग्रहणी में पहुँचता है। कुछ अन्तःपरजीवी कृमि आश्चर्यजनक स्थानों जैसे आँखों के लेंस, लसिका एवं मस्तिष्क के आवरण (meninges) में पाए जाते हैं। ये यहाँ तक कैसे पहुँचे, यह समझ से परे है

और बहुत दिलचस्प प्रश्न है।

नियत स्थान पहुँचने की प्रक्रिया पर खोज

अन्तःपरजीवी पर शोध करने वाला प्रत्येक शोधार्थी सिद्धान्ततः मेज़बान में संक्रमण तथा अन्तःपरजीवी के नियत स्थान और उसके वहाँ तक पहुँचने का रास्ता खोजने की कोशिश करता है। पिछले 100 वर्षों से अनेक जिज्ञासु एवं बेहद प्रतिबद्ध वैज्ञानिकों ने अपने दिमागी घोड़े दौड़ाए पर परिणाम सिफर ही रहा है।

मेज़बान जीव के अन्दर अन्तःपरजीवी के व्यवहार को जानने में कई तकनीकी परेशानियाँ सामने आती हैं। एक अन्तःपरजीवी कृमि को मेज़बान के शरीर से बाहर निकालने पर परिस्थितियाँ भिन्न हो जाती हैं, वास्तविक नहीं रहतीं। इतना ही नहीं, विच्छेदन द्वारा मेज़बान को खोलने से भी मेज़बान की परिस्थितियाँ मूल से भिन्न हो जाती हैं। इसलिए अन्तःपरजीवी कृमि एवं इसके जैसे अन्य उदाहरणों में प्राणि व्यवहार सम्बन्धी प्रयोगों के प्रामाणिक एवं मान्य आँकड़े प्राप्त नहीं किए जा सकते और अन्तःपरजीवी वैज्ञानिक यह मान लेने पर मजबूर हो जाते हैं कि परजीवियों का व्यवहार मेज़बान के बाहर भी अन्दर जैसा ही होता होगा।

किसी भी अन्तःपरजीवी के समस्त मेज़बान का वातावरण एक-सा होता है। तो वे नियत स्थान तक पहुँचने के लिए अलग-अलग मेज़बान में भी एक-सा रास्ता अपना सकते हैं। शायद अन्तःपरजीवी कृमि मेज़बान में नियत स्थान पर वैसे ही पहुँचते हैं जैसे हम बगैर लाइट जलाए, रात को एक कमरे से दूसरे कमरे में पानी पीने चले जाते हैं। हमें पूर्वानुमान से पता रहता है कि कब पहले कमरे का दरवाज़ा आया, कब दूसरे कमरे में प्रवेश किया, छूकर किचन के प्लेटफॉर्म को पहचाना और मटके की दिशा की ओर जाते हुए बगैर कुछ गिराए पानी पी लिया। अगर यह प्रक्रिया रात को हम रोज़ दोहराएँगे तो पूर्वानुमान द्वारा बाधाओं से बेहतर तरीके से निपटते हुए पानी पी ही रहे होंगे। क्या ऐसा ही कुछ अन्तःपरजीवियों में होता है?

रासायनिक आकर्षण परिकल्पना

विश्वव्यापी सामान्य लीवरफ्लूक *फैसिओला हैपैटिका* एक ट्रिमेटोड[1] अन्तःपरजीवी कृमि है (चित्र-1)। ये अपना जीवन चक्र दो मेज़बान में पूरा करते हैं। पहले मेज़बान नदी या तालाब के किनारे चरने वाले भेड़ या मवेशी होते हैं तथा दूसरे घोंघे (चित्र-2)। जिस क्षेत्र में लीवरफ्लूक की भरमार होती है वहाँ भेड़ एवं मनुष्य सम्पर्क

[1] *ट्रिमेटोड अण्डाकार चपटे कृमि हैं। इनकी 18,000 से 24,000 प्रजातियों का हमें अन्दाज़ा है और ये 1 मि.मी. से लेकर 7 से.मी. की लम्बाई तक हो सकते हैं। ये ज़्यादातर सीप और कशेरुकीय जानवरों के अन्तःपरजीवी होते हैं। इनका जीवन चक्र दो मेज़बान में पूरा होता है।*

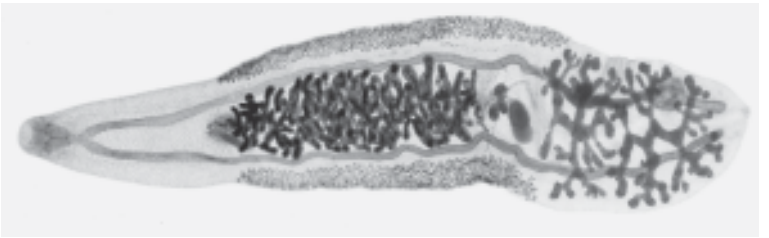

चित्र-1: वयस्क लीवरफ्लूक। ये 3 से.मी. लम्बे और 1.3 से.मी. चौड़े तक हो सकते हैं।

होने से, ये कृमि मनुष्यों को भी संक्रमित करके गम्भीर रोग पैदा करते हैं।

कशेरुकीय मेज़बान भेड़ तथा मनुष्यों में संक्रमण तब प्रारम्भ होता है जब कृमि की क्यूटिकल (बाहरी कंकाल का मुख्य हिस्सा जो अक्सर सख्त भी होता है) से घिरी प्रारम्भिक भ्रूणीय अवस्था सिस्टी सरकस, भोजन के साथ मुँह से प्रवेश कर उदर में पहुँच जाती है। कवच को तोड़कर कृमि छोटी आँत को भेद कर देहगुहा (सीलोम) से लीवर में पहुँच जाता है। जटिल रास्ते से जाने के बावजूद लीवरफ्लूक की संक्रमण दर 40% होती है जो काफी ऊँची है। अर्थात् लीवर को खोलकर देखा जाए तो 40% कृमि वहाँ मिल जाएँगे परन्तु यदि कृमि की प्रारम्भिक अवस्था को सीधे देहगुहा में छोड़ दिया जाए तो लीवर तक पहुँचने वाले कृमि की संख्या 80% तक हो जाती है। इस समय लीवरफ्लूक 250μm की लम्बाई वाले लार्वा चरण 'मिरासीडियम' में कृमि के पेट की गुहा से क्रमानुकुंचन (पेरिस्टैलिसिस) करती आँतों एवं मीसेन्टरीज़ (उदर के अन्दरूनी दीवार की परत - आंत्रयोजनी) के बीच से निकलना और लीवर तक पहुँच जाना, एक असाधारण सफलता है। इसकी तुलना शत्रु के अनजान इलाके में सैनिकों द्वारा बिना दिशा ज्ञान के 10 मील की यात्रा से की जा सकती है।

फ्लूक की लीवर तक पहुँचने की काबिलियत के बारे में यह अनुमान लगाया जाता है कि शायद लीवर के कुछ रसायनों के प्रति आकर्षित होकर कृमि उस ओर जाते होंगे। परन्तु असंख्य प्रयासों के बावजूद कोई प्रकल्पित रसायन नहीं खोजा जा सका।

वैज्ञानिक डॉस ने शोध परिणामों में पाया कि प्रवास के दौरान अन्तःपरजीवी कृमि उम्मीद के अनुसार ही विकसित होते हैं और सप्ताह भर के छोटे परन्तु बेहद महत्वपूर्ण तय समय के अन्तराल में ही कृमि को लीवर तक पहुँचना होता है वरना कृमि देहगुहा में बगैर किसी उद्देश्य के भटकते रहते हैं और अन्त में मर

जाते हैं। अनेक शोधकर्ताओं के गहन प्रयास के बावजूद लीवर से न तो कृमि को आकर्षित करने वाला कोई रसायन प्राप्त हुआ और न ही वे कोई दिशात्मक संकेत खोज पाए।

प्राणियों में रसायनों की सान्द्रता में उतार-चढ़ाव के कारण उत्पन्न प्रवणता (gradient) और प्राणियों की उस ओर आकर्षण की परिकल्पना और शोध रणनीति धरती पर स्वच्छन्द घूमने वाले स्वतंत्र जीवियों पर लागू हो सकती है, किन्तु परजीवियों पर नहीं।

अगर यह मान भी लिया जाए कि लीवर परजीवी कृमि को आकर्षित करने वाले रसायन छोड़ता है, तो भी दो कारक कृमि को लीवर तक जाने में मदद नहीं करेंगे। पहला कारक है, पेट में भोजन के पाचन की सामान्य गतिविधियों के कारण आहार नाल में हमेशा हलचल बनी रहती है तथा देहगुहा में आहार नाल एवं मीसेन्टरीज़ लगातार हिलती रहती हैं। इस कारण पूरी देहगुहा में रसायनों की प्रवणता एक समान होगी। विभवान्तर (difference in strength) उत्पन्न होना मुश्किल है। दूसरा कारक, रसायनों की कम या ज़्यादा मात्रा के कारण होने वाली प्रवणता को बने रहने के लिए एक खुला सिरा होना चाहिए जिससे कि संतृप्त होने की स्थिति

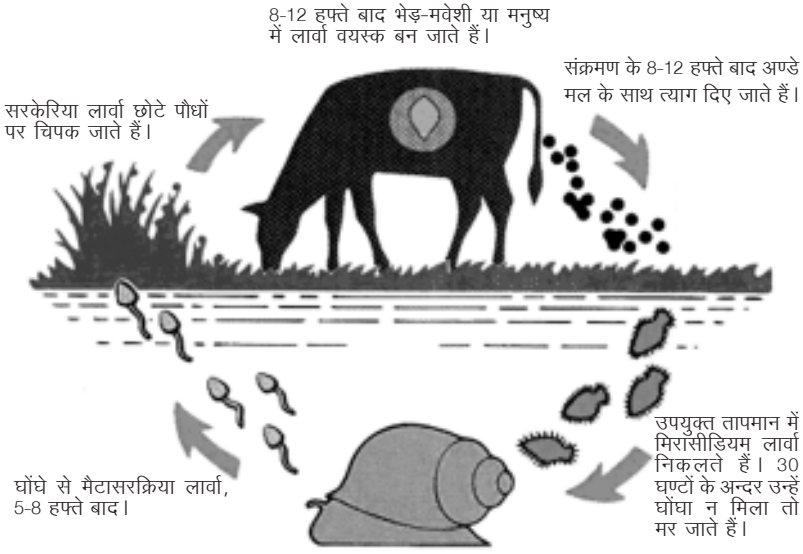

चित्र-2: लीवरफ्लूक का जीवन-चक्र।

(saturation) नहीं आए। संतृप्ति से अधिक या कम सान्द्रता का अन्तर खत्म हो जाता है तथा ग्रेडिएंट उत्पन्न नहीं हो पाता। किन्तु देहगुहा अण्डे के समान बन्द कमरा है जिसमें भले ही सान्द्रता का मिश्रण नहीं हो परन्तु ग्रेडिएंट उत्पन्न नहीं होगा।

ऐसा नहीं है कि लीवर से पृथक किए गए यौगिकों के प्रति लीवरफ्लूक प्रतिक्रिया नहीं देते। लीवर से पृथक किए गए अनेक यौगिक लीवरफ्लूक की गति, भूख एवं हरकत के तरीकों में बदलाव भी लाते हैं, परन्तु इनमें से कोई भी यौगिक ऐसा आकर्षण या संवेदना उत्पन्न नहीं करता जिससे कृमि केवल लीवर की ओर ही गति करे। न केवल इतना, इनका गन्तव्य तक पहुँचने का मार्ग भी सुनिश्चित होता है। कृमि, लीवर एवं डायफ्रम के सम्पर्क वाली सतह से लीवर में प्रवेश करते हैं। एक चौथाई कृमि डायफ्रम को भेदते हुए रास्ता बनाते हैं। फिर लीवर-डायफ्रम सम्पर्क-सतह को भेद कर लीवर में प्रवेश करते हैं। अवलोकन एवं प्रयोग इस बात को सिद्ध करते हैं कि कृमि लीवर को खाकर पहचानते हैं, आकर्षित करने वाले रसायनों से नहीं।

डी. फ्लेक्सिकॉडेटम कृमि स्वच्छ जल में पाई जाने वाली, काले सिर की मिन्नो और रेनबो ट्राउट नामक मछलियों की आँखों के लेंस में पाए जाते हैं। इस अन्तःपरजीवी ट्रिमेटोड का जीवन-चक्र तीन मेज़बानों में पूर्ण होता है। सबसे पहले वयस्क कृमि मछली खाने वाले पक्षियों की आँत में जोड़े बनाकर प्रजनन करते हैं। प्रजनन के बाद उत्पन्न अण्डे मल के साथ शरीर से त्याग दिए जाते हैं। पानी के सम्पर्क में अण्डों से लार्वा बाहर आकर, मीठे पानी में रहने वाले स्नेल के भीतर प्रवेश कर जाते हैं। अब कृमि स्नेल में संख्या तथा आकार में वृद्धि करते हैं तथा फिर से पानी में आकर मछली के भीतर प्रवेश करने का इन्तज़ार करते हैं। मौका पाते ही कृमि के जीवन-चक्र के इस चरण के लार्वा - सरकेरिया - मछली की त्वचा को भेदकर आँखों के लेंस तक पहुँच जाते हैं। धुँधली दृष्टि के कारण मछली के व्यवहार में ऐसे बदलाव आते हैं कि पक्षी उसे खा जाएँ। अनेकों प्रयास हुए, फिर भी आँखों से सरकेरिया लार्वा को आकर्षित करने वाला कोई भी रसायन प्राप्त नहीं हुआ। पूरी मछली में लार्वा को आकर्षित करने के लिए किसी रसायन के सान्द्रण में विभावान्तर होना वास्तव में असम्भव है। अगर लेंस से लार्वा को आकर्षित करने वाला रसायन निकलता भी है तो उसकी सान्द्रता सबसे ज़्यादा लेंस में, फिर कम होते हुए क्रमशः आँखों के विभिन्न चेम्बर में भरे ह्यूमर नामक द्रव में, आँखों के पीछे खोपड़ी के गढ़ढों में, खोपड़ी में, गिल्स में तथा गिल्स के आसपास की पेशियों में होगी जिसमें सरकेरिया क्रमशः प्रवेश करता है। रक्त परिवहन तंत्र भी ऐसे सान्द्रण को अवशोषित कर नष्ट कर

देता है।

उपरोक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि अनेक शोध होने के बाद भी वैज्ञानिक कृमि को आकर्षित करने वाला रसायन नहीं खोज पाए और ऐसे किसी भी रसायन की कल्पना करने में अनेक तकनीकी उलझनें भी विद्यमान हैं। कृमि नियत स्थान तक कैसे पहुँचते हैं, यह पता करने के लिए एक बेहतर मॉडल की ज़रूरत है जो मेज़बान के भीतरी वातावरण को अन्तःपरजीवी कृमि के समक्ष उत्पन्न होने वाली परिस्थितियों से सम्बन्धित आँकड़ों के द्वारा समझाने में मददगार हो।

प्राणियों के स्वभाव, व्यवहार और पारिस्थितिकी पर उपलब्ध हमारा सारा ज्ञान स्वतंत्रजीवी जलीय तथा स्थलीय तंत्र में निवास करने वाले प्राणियों से प्राप्त हुआ है। हम सारे उदाहरणों में जलीय तथा स्थलीय तंत्र पर हुए शोध को थोपने की कोशिश करते हैं। परन्तु, अन्तःपरजीवी को मेज़बान के अन्दर मिलने वाला वातावरण स्वतंत्रजीवियों से बिलकुल भिन्न होता है। मेज़बान के अन्दर उत्पन्न परिस्थितियों से ही अन्तःपरजीवी कृमियों का विकास हुआ है।

स्वतंत्रजीवी एवं अन्तःपरजीवी प्राणियों के वातावरण में अनेक असमानताएँ होती हैं। सबसे महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि अन्तःपरजीवी के (मेज़बान में) वातावरण के बारे में अनुमान स्वतंत्रजीवियों की तुलना में बहुत सटीकता से लगाया जा सकता है। जब एक अन्तःपरजीवी मेज़बान के शरीर में प्रवेश करता है तो समान प्रजाति के अन्य सदस्यों की परिस्थितियाँ भी उम्मीद के मुताबिक समान ही रहती हैं जबकि दो सटे हुए तालाबों में भी स्वंतत्रजीवी प्राणियों को भिन्न परिस्थितियाँ मिलती हैं। इस बात का फायदा अनेक शोधार्थी उठाते हैं और समान कार्य के बावजूद वे तर्क देते हैं कि शोध अध्ययन के लिए चुना गया तालाब भिन्न है।

प्रत्येक मेज़बान में आन्तरिक समस्थापन तंत्र (homeostatic mechanism) के कारण तापमान, लवण की सान्द्रता, pH आदि सदैव स्थाई बने रहते हैं। इन सभी कारकों के अलावा अन्तःपरजीवियों को एक ही परिवार की मेज़बान प्रजातियों में अंगों का आकार तथा स्थिति में भी एकरूपता मिलती है। जब अन्तःपरजीवी कृमि मेज़बान की आँत में क्रमानुकुंचन द्वारा भोजन के साथ आगे बढ़ते हैं तो आँत के प्रत्येक भाग में निश्चित रसायनों की मौजूदगी तथा क्रमवार संरचनात्मक निश्चितता रहती है। एक ही प्रजाति के दो जीवों में छोटे स्तर पर बदलाव सम्भव है परन्तु बड़े स्तर पर नहीं। उदाहरण के लिए, देहगुहा से आगे बढ़ते लंगवर्म के लिए फेफड़े हमेशा डायफ्रम के दूसरी तरफ होते हैं। आइवर्म के लिए प्रत्येक मछली की आँखें निश्चित जगह ही उपलब्ध होती हैं।

स्वतंत्र रूप से रहने वाले प्राणियों

को प्रायः समय के मुताबिक उत्पन्न परिस्थितियों का सामना करना होता है, जिसमें वे एक-जैसा या स्टिरियोटिपिक व्यवहार करते हैं। इसे ज़मीन पर अण्डे सेती बतख के व्यवहार से समझा जा सकता है। अण्डे सेती बतख के घोंसले से एक अण्डा लुढ़ककर बाहर चला जाता है, तो बतख अण्डे को चोंच से लुढ़काकर फिर से घोंसले में ले आती है और सेने लगती है। बतख का यह व्यवहार स्थाई और हमेशा एक जैसा ही रहता है। अगर अण्डों को गेंद से बदल दिया जाए तो गेंद के लुढ़कने पर भी, गेंद को घोंसले में वापस लाकर अण्डों के समान सेया जाना जारी रखा जाएगा। इस उदाहरण में घोंसले से अण्डों का बाहर होना वह उददीपन है जो बतख को हमेशा अण्डा घोंसले में लाने के लिए प्रेरित करता है। ऐसे व्यवहार से बतख के बच्चों के ज़िन्दा रहने की सम्भावना ज़्यादा रहती है। इस प्रकार के व्यवहार को फिक्स्ड एक्शन पैटर्न (FAP) कहते हैं। फिक्स्ड एक्शन पैटर्न का मुख्य लक्षण है कि क्रिया सीखकर अपनाए जाने की बजाय, यह आनुवंशिक है।

फिक्स्ड एक्शन पैटर्न का एक और दिलचस्प उदाहरण उत्तरी अटलैंटिक महासागर के आसपास पाए जाने वाले पक्षी गल का है। इसकी पीली चोंच के निचले सिरे पर लाल रंग का धब्बा देखते ही चूज़े भोजन माँगने के लिए चोंच मारने लगते हैं। एक लकड़ी पर भी लाल धब्बा बनाकर यह प्रयोग दोहराया जा सकता है। प्रत्येक बार लाल रंग का धब्बा (उददीपन) देखते ही बच्चे भोजन माँगने के लिए लाल रंग पर चोंच मारते हैं। बतख का अण्डों को वापस घोंसले में लाना एवं बच्चों का भोजन प्राप्त करने के लिए लाल धब्बे को चोंच मारकर, भोजन प्राप्त करने के फिक्स्ड एक्शन पैटर्न जीवित रहने की सम्भावना को बढ़ाने वाले अनुकूलन हैं। इसी प्रकार कृमि मेज़बान में, जहाँ वातावरण उम्मीद के मुताबिक ही है, पहुँचने में सफल हो जाता है। और जैव-विकास के दौरान विकसित हुआ यह व्यवहार स्थापित होकर सदैव एक जैसा हो जाता है।

राउण्डवर्म द्वारा आवास का चयन

यद्यपि *एच. पॉलिगायरस* (चित्र-3) एवं *टी. स्पायरेलिस* (आँतों की कृमि) के जीवन-चक्र तथा वर्गीकरण में इनकी स्थिति बिलकुल अलग है परन्तु दोनों ही चूहे (मेज़बान) की आँत के अग्र भाग ग्रहणी में वास करते हैं। *एच. पॉलिगायरस* चूहों के अन्तःपरजीवी हैं तथा ये अपना जीवन-चक्र चूहों में ही पूरा कर लेते हैं। वयस्क *एच. पॉलिगायरस* चूहों की ग्रहणी में प्रजनन कर अण्डे देते हैं। चूहों के मल के साथ कृमि के अण्डे शरीर से बाहर आ जाते हैं तथा लार्वा में बदल जाते हैं। दो बार निर्मोचन (moult) करने के बाद बने ये L-3 लार्वा भोजन के साथ चूहों में प्रवेश करके फिर से ग्रहणी में पहुँच जाते हैं

https://upload.wikimedia.org/wikipedia/commons/c/ca/Heligmosomoides.jpg

चित्र-3: *एच. पॉलिगायरस*।

तथा अपना जीवन-चक्र पूर्ण करते हैं। *एच. पॉलिगायरस* के रसायन चूहों के प्रतिरक्षा तंत्र को दबाए रखने में भी सफल हो जाते हैं।

टी. स्पायरेलिस के संक्रमण को चूहे एक भौगोलिक हिस्से में बनाए रखने में मदद करते हैं। मांसाहारी प्राणी जैसे सूअर या भालू संक्रमित चूहों को खाकर कृमि का जीवन-चक्र प्रारम्भ करते हैं। कठोर आवरण (सिस्ट) से घिरे लार्वा जैसे ही सूअर के अमाशय में अम्ल के सम्पर्क में आते हैं, कठोर आवरण त्यागकर और अमाशय को भेदकर, वे देहगुहा में प्रवेश कर लेते हैं। फिर पेशियों में जाकर सुरक्षित आवरण से घिर जाते हैं। यदि कोई सूअर का अधपका मांस खा लेता है तो लार्वा मनुष्यों में पहुँचकर ट्राइकैनेल्लोसिस नामक बीमारी पैदा कर देते हैं। बीमारी में पेट दर्द, दस्त, बुखार, पेशियों में दर्द एवं थकान होती है।

उपरोक्त दोनों प्रकार के कृमियों में आँतों को भेदना फिक्स्ड एक्शन पैटर्न है। कौन-सा कारण लार्वा को ग्रहणी भेदने के लिए प्रेरित करता है? उत्तर है पित्त। पित्त छोटी आँत में लीवर द्वारा छोड़ा जाने वाला द्रव है जो भोजन की वसा को पचाने में सहायक होता है। *टी. स्पायरेलिस* एवं *एच. पॉलिगायरस,* दोनों पित्त के सम्पर्क में आते ही सर्पिलाकार तरीके से तैरकर, आँतों को भेदकर देहगुहा में प्रवेश कर जाते हैं। यहाँ पित्त एक उददीपन कारक है जिससे फिक्स्ड एक्शन पैटर्न प्रारम्भ हो जाता है। प्रयोगों से यह भी पता चला है कि *एस. पॉलिगायरस* को जहाँ पित्त मिलता है, वे वहीं की दीवार में प्रवेश कर जाते हैं। अगर सर्जरी द्वारा ग्रहणी में पित्त के प्रवेश को रोककर उदर या आँतों के अन्तिम भाग में पित्त डाल दिया जाए, तो पित्त के सम्पर्क में आते ही कृमि वहाँ की दीवार में प्रवेश कर जाएँगे। अतः कृमि को ग्रहणी में प्रवेश करने के लिए कोई आकर्षित करने वाले रसायन की आवश्यकता

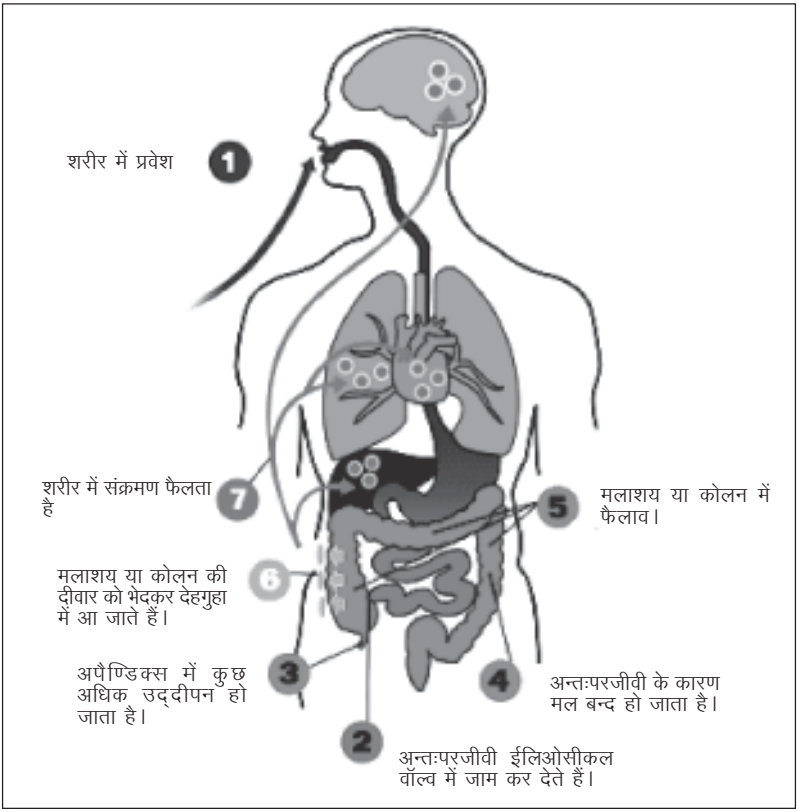

चित्र-4: लीवरफ्लूक हमारे शरीर में लीवर तक कैसे पहुँचता है?

नहीं है। पित्त के उददीपन से कृमि का लार्वा अपनी सारी शक्ति ग्रहणी की दीवार भेदने में लगा देता है। सही जगह पर स्थित और शक्ति-सम्पन्न लार्वा आँत की दीवारों को भेद देते हैं तथा बाकी सभी थके-हारे लार्वा मल द्वारा शरीर से बाहर फेंक दिए जाते हैं।

सामान्य लीवरफ्लूक द्वारा आवास चयन

भेड़ में लीवरफ्लूक लार्वा का संक्रमण भोजन (घास) के साथ शरीर में प्रवेश करने से प्रारम्भ होता है (चित्र-4)। कड़े आवरण से घिरा लार्वा (मेटासरकेरिया) निष्क्रिय तरीके से जैसे ही ग्रहणी में पहुँचता है, पित्त फिक्स्ड

एक्शन पैटर्न उद्दीप्त कर देता है। एक घण्टे में ही लार्वा आँतों की दीवार को भेदकर, देहगुहा से होकर आंत्रयोजनी में पहुँच जाते हैं। न केवल उपरोक्त तीनों उदाहरण परन्तु आँतों में पाए जाने वाले कुल 200 प्रकार के कृमि पित्त के प्रभाव में अपना व्यवहार बदलकर फिक्स्ड एक्शन पैटर्न करने लगते हैं। लीवरफ्लूक का ग्रहणी को भेदकर देहगुहा में प्रवेश करना, आधा युद्ध जीतने के बराबर है क्योंकि लीवरफ्लूक का आवास लीवर है। देहगुहा से लीवर तक, लीवरफ्लूक लार्वा की यात्रा को मेज़बान के समान बनाए गए कृत्रिम चेम्बर में अनुकृत (सिम्युलेट) कर सूक्ष्मदर्शी से फिल्माया गया है। लीवरफ्लूक के व्यवहार में परिवर्तन को आसानी-से पहचाना जा सकता है क्योंकि ये परिवर्तन ही फिक्स्ड एक्शन पैटर्न है।

लीवरफ्लूक में दो चूषक (suckers) पाए जाते हैं। एक चूषक आगे मुँह को घेरे हुए रहता है तथा दूसरा शरीर की मध्य-पश्च सतह पर होता है। ये दोनों चूषक कृमि के प्रचलन में मददगार होते हैं। जब कृमि एक के बाद दूसरे चूषक का उपयोग करके प्रचलन करते हैं तो गति (locomotion) नामक फिक्स्ड एक्शन पैटर्न होता है। जब चूषक को बगैर निकाले कृमि आगे बढ़ने की कोशिश करते हैं तो ऐंठन (crimping) तथा घसीटने वाले (creeping) फिक्स्ड एक्शन पैटर्न होते हैं जो कृमि को सफलता पूर्वक लीवर में डालने के लिए आवश्यक होते हैं।

अनेक प्रयोगों से यह पता चला है कि फ्लूक का देहगुहा से लीवर तक का प्रवास सीधा न होकर शरीर की आन्तरिक दीवार से होकर जाता है। मेज़बान में फ्लूक के प्रवेश करने के बाद अलग-अलग समय अन्तराल पर, उनकी स्थिति जानने से प्रवास का मार्ग पता चला है। भोजन के साथ छोटी आँत में आने के बाद फ्लूक आँत को भेदकर, देहगुहा में उपस्थित पर्दे के समान संरचना वाली आंत्रयोजनी में प्रवेश कर जाते हैं। ऐंठन चाल वाली फिक्स्ड एक्शन पैटर्न फ्लूक को आंत्रयोजनी से निकलकर पेट की दीवार तक पहुँचने में मदद करती है। मेज़बान के शरीर में घुसने के 24 घण्टे बाद तक सभी फ्लूक पेट की दीवार में पाए गए हैं। फिर रेंगकर चलने वाली चाल में वृद्धि होती जाती है जिससे फ्लूक बगैर गिरे रेंगते हुए लीवर तक पहुँच जाते हैं। फ्लूक के प्रवास के लिए यहाँ दिशा की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि पेट की दीवार अण्डे के खोल के अन्दर वाली सतह के समान है। अण्डाकार होने से किसी भी दिशा में चलने पर अन्ततः दूसरा सिरा आ ही जाता है। 95 प्रतिशत फ्लूक पेट की दीवार से होते हुए, लीवर में उस जगह से प्रवेश करते हैं जहाँ डायफ्रम लीवर से सटा रहता है। लीवर पर पहुँचते ही ऐंठन चाल का फिक्स्ड एक्शन पैटर्न समाप्त हो जाता है तथा गति फिक्स्ड

एक्शन पैटर्न प्रारम्भ हो जाता है, जो अगले एक वर्ष या पूरे जीवन तक बना रहता है। पूरे वर्णन का मुख्य निष्कर्ष यह है कि लीवरफ्लूक द्वारा आवास ढूँढ़ने की रणनीति इसलिए कारगर हो गई क्योंकि वातावरण अनुमान के अनुसार ही था। वैज्ञानिकों को ऐंठन एवं रेंगने वाली चाल को उत्प्रेरित करने वाले कारण अभी तक पता नहीं हैं।

फीता कृमि द्वारा आवास का चयन

अंगों के अन्दर रहने वाले कृमि को छोड़कर आँतों, रक्त वाहिनियों तथा पित्त नलिकाओं में रहने वाले अन्तः-परजीवी कृमियों में नियत स्थान पर प्रवाह के विरुद्ध रुके रहने के लिए अनेक प्रकार के चूषक, अंकुश (हुक), पकड़ बनाने वाले दाँत, गोल होकर पकड़ बना सकने वाला शरीर का अन्तिम हिस्सा आदि अंग विकसित हो चुके हैं। कुछ कृमि तो प्रवाह के विरुद्ध तैरकर, प्रजनन लायक जोड़ीदार साथी तथा मेज़बान के भोजन को भी खोज लेते हैं।

हायमेनोलेपिस डिमिनूटा चूहों में पाया जाने वाला एक फीता कृमि है। चूहे की छोटी आँत में ये अपने शरीर की बाह्य पारगम्य सतह से पचा हुआ भोजन सोखकर, भोजन प्राप्त करते हैं। अन्य फीता कृमि के विपरीत *एच. डिमिनूटा* ज़्यादा मेज़बान तत्वों को प्राप्त करने के लिए छोटी आँत में सतत आगे-पीछे घूमते रहते हैं। जैसे-जैसे भोजन क्रमानुकुंचन से आँतों में आगे बढ़ता है वैसे-वैसे कृमि भी भोजन के साथ-साथ आगे बढ़ते जाते हैं। ये प्रयोग दर्शाते हैं कि *एच. डिमिनूटा* और उनके जैसे कृमि मेज़बान तत्वों की सान्द्रता को पहचानते हैं और दिशा का ज्ञान प्राप्त कर 50 से.मी. लम्बे शरीर को उस दिशा में ले जाते हैं। यह खोज आश्चर्यजनक है क्योंकि फीता कृमि एक ऐसा प्राणी है जिसमें संवेदी अंग, पाचन तंत्र, प्रचलन के अंग विलुप्त हो चके हैं या अवशेषी हो गए हैं। परन्तुः प्रश्न फिर से यही उठता है कि कृमि को कैसे पता चलता है कि कब मेज़बान आ गया है और उसी तरफ प्रवास किया जाए। ऐसा लगता था कि या तो भोजन, या आँत के रासायनिक संकेत कृमि को प्रवास के लिए उत्प्रेरित करते हैं। इस खोजबीन में संसार की 20 प्रयोगशालाओं ने प्रयास किए परन्तु नतीजे शून्य थे। फिर से उत्तर फिक्स्ड एक्शन पैटर्न से समझा जा सकता है।

एच. डिमिनूटा का शरीर चूहे की आँत की लम्बाई का आधा होता है अर्थात् काफी लम्बा है। इतने लम्बे शरीर के बावजूद कृमि के पास आँत से चिपकने के लिए कमज़ोर चूषक ही होते हैं। चूषक, कृमि के अग्र सिरे अर्थात् स्कोलेक्स पर पाए जाते हैं। इतने छोटे एवं कमज़ोर चूषक वास्तव में आँत की क्रमानुकुंचन गति से अपने आपको आँत में रोके रखने के लिए अपर्याप्त हैं। ऐसे कृमि आँत की दिशा

के विपरीत परन्तु आँत की गति के दर से फिक्स्ड एक्शन पैटर्न उत्पन्न करते हैं। चूहों की आँत में सबसे अधिक क्रमानुकुंचन ग्रहणी में होता है तथा सबसे कम इलियम में। इसी के साथ ताल बैठाते हुए कृमि का शरीर भी वैसी ही प्रतिक्रिया विपरीत दिशा में करता है।

ऐसे कृमि जो मेज़बान में फिक्स्ड एक्शन पैटर्न से अपना बचाव कर लेते हैं, वे जैव-विकास में चयनित होकर इन लक्षणों को अगली पीढ़ी में भेज देते हैं। मेज़बान की अग्र आँत में भोजन आते ही क्रमानुकुंचन बढ़ने लगता है, तो कृमि भी फिक्स्ड एक्शन पैटर्न की दर को बढ़ा कर ज़्यादा भोजन की खोज में आगे जाने लगते हैं। जैसे ही पचा हुआ भोजन आगे बढ़ता है, आँतों के पश्च भाग में क्रमानुकुंचन बढ़ने लगता है, तो कृमि भी उस ओर गति तेज़ कर देते हैं। इस प्रकार कृमि केवल आँत के क्रमानुकुंचन के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं, भोजन या अन्य रसायन के लिए नहीं।

विद्यार्थी द्वारा पूछे गए प्रश्न का उत्तर देते हुए मुझे दो पीरियड लग गए। कुछ विद्यार्थी रोचकता से समझ रहे थे तो कुछ अब झपकी लेने लग गए थे। सायरन बजते ही झपकी लेते विद्यार्थियों की जान में जान आई। उन्हीं में से एक विद्यार्थी ने मेरे कक्षा से जाने से पहले एक प्रश्न दागा, "नींद क्यों आती है?"

विपुल कीर्ति शर्मा: शासकीय होल्कर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर में प्राणिशास्त्र के वरिष्ठ प्रोफेसर। इन्होंने 'बाघ बेड्स' के जीवाष्मों का गहन अध्ययन किया है तथा जीवाष्मित सीअर्चिन की एक नई प्रजाति की खोज की है। नेचुरल म्यूज़ियम, लंदन ने उनके सम्मान में इस नई प्रजाति का नाम उनके नाम पर *स्टीरियोसिडेरिस कीर्ति* रखा है। वर्तमान में वे अपने विद्यार्थियों के साथ मकड़ियों पर शोध कार्य कर रहे हैं। पीएच.डी. के अतिरिक्त बायोटेक्नोलॉजी में भी स्नातकोत्तर किया है।